

महिला कथाकारों के कथा साहित्य में नैतिक मूल्य—बोध

श्री जाधवर धनराज संदिपान

शोधार्थी

हिंदी भाषा एवं साहित्य अनुसन्धान केंद्र

महात्मा बसवेश्वर महाविद्यालय लातूर ४१३५७२

नैतिकता एक ऐसा मूल्य है जिसका एक सिरा अगर व्यक्ति से जुड़ता है तो उसका दूसरा सिर समाज से जुड़ता है। व्यक्ति की नैतिक अवधारणा हमेशा समाज—सापेक्ष होती है और समाज अपनी व्यवस्था में व्यक्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह इन धारणाओं को सम्मान दे और उसका पालन भी करे। इसके साथ समाज की मान्यतायें, परंपराएँ, रीति—रिवाज और अन्य सांस्कृतिक संबंध भी जुड़े रहते हैं। व्यक्ति का पूरा का पूरा सामाजिक सरोकार नैतिक अवधारणाओं पर ही टिका रहता है और इसका विन्यास समाज की सबसे प्राथमिक इकाई परिवार से शुरू होकर समाज निर्मित सभी संस्थाओं तक विस्तार पाता है। धार्मिक आस्थायें और विश्वासों के साथ ही जाति—बिरादरी तथा क्षेत्रीय नियम—कायदे और कानून इसी नैतिक मूल्य—बोध का हिस्सा होते हैं। सामाजिक बदलावों के साथ ही नैतिकता के मूल्यों में भी बदलाव आता है। लेकिन इसकी गति पहले बहुत धीमी होती है फिर इसे जोर पकड़ते देर भी नहीं लगती। प्रत्येक स्थिति में यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि बिना नैतिक मूल्यों के समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती। सच कहा जाय तो व्यक्ति से समाज का लगाव इन्हीं नैतिक मूल्यों के सेतु से ही संभव हो पाता है। यह सेतु जितना मजबूत होता है सामाजिकता भी उतनी ही प्रगाढ़ होती है और यह सेतु अगर कमजोर हुआ अथवा औपचारिक हुआ तो सामाजिकता भी कमजोर और औपचारिक हो जाती है। सामाजिक जीवन में ये जो विश्रृंखलता, विघटन और भ्रष्टाचार अनैतिकता जैसी स्थितियाँ उभरकर आती हैं उनके पीछे नैतिक मूल्यों का स्खलन ही होता है। व्यक्ति हो अथवा वर्ग समूह जब इन नैतिक मूल्यों को अपने—अपने हक तक सीमित कर देता है तो व्यक्ति की व्यक्ति से टकराहटें और एक वर्ग समूह की दूसरे वर्ग से टकराहटें देखने को मिलती हैं और तब सामाजिक व्यवस्था अस्थिर होती है। यह होता आया है और अभी भी हो रहा है। इसके सामान्यतः दो रूप सामने आते हैं एक तो मूल्यों में परिवर्तन का है जिसमें एक नवीन नैतिक अवधारणा पुरानी पड़ती नैतिक अवधारणा की जगह लेती है। दूसरी स्थिति यह होती है कि मूल्य परिवर्तित होने के स्थान पर स्खलित होते हैं। यह स्थिति सामाजिक पतन की भ्रष्टाचारवादी अवस्था को जन्म देती है और मानवीय संबंध जो मूलतरु सामाजिक संबंध ही होते हैं निजी स्वार्थों की स्वेच्छाचारिता की भेंट चढ़ जाती हैं। जिन्हें हम मानवीय मूल्य कहते हैं, वे सभी मूल्य वस्तुतः नैतिक मूल्य ही हैं। नैतिकता का मानदंड जब तक मानवीय होता है तब त कवह कादर्ष समाज की संरचना का कारक बनता है और जब यह मानदंड टूटता है तो व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान भी खो जाती है। लेकिन इतना अवश्य कहना होगा की आवश्यकता की दृष्टि से भी और व्यवस्था की दृष्टि से भी परिवर्तित करती रहती है। नैतिक मूल्य जब मानवीय मूल्यों से संबंध और अनुप्राणित होते हैं तो वे वैश्विक हो जाते हैं और जब क्षेत्रीय सभ्यता और संस्कृति से संबंध होते हैं तो इनमें देशिकता की अभिव्यक्ति होती है। इस तरह विभिन्न स्तरों पर इनका

घेरा सिमटता भी जाता है और फैलता भी जाता है। शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, वैज्ञानिक उपलब्धियों, उपार्जन के संसाधन और समाज सुधर के आंदोलन तथा धार्मिक आस्थाएँ इन नैतिक मूल्यों को अपने अनुसार परिवर्तित करती रहती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि नैतिक मूल्यों को हर समाज समादर देता आया है और परिवर्तित मूल्यों को भी वह तभी स्वीकार करता है जब वे उसकी कसौटी पर खरे उतरते हैं। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही अनैतिक हो, अपने को अनैतिक कहलाना नहीं पसंद करता। वह अपनी अनैतिकता को भी सामान्य स्वीकृति के लिए नैतिकता और अनैतिकता, दोनों ही समान रूप से मौजूद रहती हैं लेकिन समाज स्वीकार नैतिकता को ही करता है। अनैतिकता को समाज की स्वीकृति तो नहीं मिलती लेकिन कुछ समर्थ और कुशल लोग इसे चलाते हैं और तर्कों से इसे नैतिक सिद्ध करने की कोशिश करते हैं।

भारत एक अत्यंत प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का देश है। उसकी समानांतर निर्मित होने वाली कई सभ्यताएँ अब इतिहास का विषय बन चुकी हैं। निश्चित ही इसकी प्राचीनता को अनेक आयामों पर सामाजिक बदलाव की भूमिका से होकर गुजरना पड़ा है। सांस्कृतिक रूप से इसने विभिन्न जातिवर्गों की सांस्कृतिक और सभ्यतागत तात्त्विकता को अपनी मूल धारा में समेटा है। पुरा ऐतिहासिक काल से विभिन्न देशी-विदेशी जातियों का इससे संपर्क हुआ है। टकराहटें भी हुई हैं और मेल मिलाप भी हुआ है। बहुतेरी विदेशी जातियों का विलय भी हुआ है लेकिन जिनका विलय नहीं भी हुआ उनके समाज जीवन के मूल्य भी भारतीय समाज भी मुख्यधारा के मूल्य बने हैं। लगभग ये सभी मूल्य एक बिंदु पर आकर नैतिक मूल्य बन जाते हैं। इसके सिवा एक लंबे कालखंड तक यह मूल्य धर्म, संप्रदाय और पंथ समाज के विभिन्न वर्ग समुदायों के नैतिक मूल्य निर्धारित करते रहे हैं। राजनीतिक दृष्टि से सामंतवादी सत्ता के अनुकूल नैतिक मूल्यों की भी व्याख्या होती रही है। नैतिक मूल्यों पर सामाजिक रुढ़ियों और परंपराओं की घेराबंदी भी सामंतवादी व्यवस्था के साथ ही बनी रही। भारत के संदर्भ में यह स्थिति कमोबेश आजादी मिलने के समय तक वर्तमान रही। इसका कारण अरसे तक भारत पर विदेशी सत्ता का अधिपत्य बने रहना है। इस गुलामी ने एक ओर तो औद्योगिक सभ्यता के विकास की गति हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में बहुत धीमी रखी, दूसरी ओर सामाजिक सुधारों और आंदोलनों की शक्ति को भी प्रभावित किया। शिक्षा प्रसार का कम होना और वैज्ञानिक क्षमता से कटे रहना परंपराओं और रुढ़ियों से जुड़े रहने का कारण बना रहा। अतः नैतिक मूल्य बहुत दिनों तक समाज जीवन में स्थापित रहे और उनमें परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही। बावजूद इसके कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही कई सुधारवादी आंदोलन चलाये गये और विदेशी दासता से मुक्ति का संग्राम भी नयी जरूरतों के तहत बहुत हद तक नैतिक मूल्यों की परिभाषा बदलने में सहायक हुआ। लेकिन समाज की प्रारंभिक इकाई से लेकर समाज की बड़ी-से-बड़ी संस्थाओं तक मूल्यों में व्यापक बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होते। हाँ, इतना जरूर माना जा सकता है कि समाज में इन सुधारों और आंदोलनों ने नैतिक मूल्यों के प्रति आग्रहशीलता को प्रखर अवश्य बनाया।

स्वतंत्रता आंदोलन ने देश में राष्ट्रीयता का विकास किया। राष्ट्रीयता की अवधारणा अपने आप में एक नैतिक अवधारणा है। इस आंदोलन पर महात्मा गाँधी का व्यापक प्रभाव रहा है और गाँधी व्यक्ति से लेकर समाज तक के नैतिकता के प्रबल समर्थक थे। इसलिए आंदोलन पर नैतिक शुचिता का प्रभाव का प्रभाव था और आंदोलन ने बहुत हद तक समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाले योद्धाओं के हाथ में देश की बागडोर आई और देश के लिए जिस संविधान का निर्माण हुआ उसमें भी हर वर्ग और समाज के लिए नैतिक मूल्यों का समावेश किया गया। इसलिए

बीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक समाज में और व्यक्ति में भी नैतिकता दिखाई देती थी। यह समझाना होगा कि ये नैतिक मूल्य संस्कृति आधारित तो थे लेकिन इनका स्वरूप रुढ़ियों और परंपराओं से बाहर था। इन नैतिक मूल्यों ने शिक्षा, राजनीति और उपार्जन को भी प्रभावित किया। खास कर समाज के दबे कुचले वर्गों और स्त्रियों के संदर्भ में प्रगतिशीलता एक सामाजिक दायित्व की नैतिक अभिव्यक्ति बन गई। यह चढ़ाव बहुत दिन तक कायम नहीं रह सका। पिछली शताब्दी के साठ के दशक के आते-आते विभिन्न कारणों के चलते नैतिक मूल्यों में क्षरण होना प्रारंभ हो गया। गुलामी के दौरान एक लंबे कालखंड तक आरुद्ध हुई विकास की धारा बड़ी तेजी के साथ बह निकली। फलतः एक अभीप्सा और लालसा ने व्यक्ति जीवन के संयम और सदाचार को जिनका निर्धारण नैतिक मूल्य करते थे एक विचित्र आपाधापी के हवाले कर दिया। शिक्षा का आग्रह अब नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा से कटकर आजीविका केंद्रित हो गया। धनशक्ति मूल्य आधारित सभ्यता को तिरस्कृत करने लगी। स्त्री-पुरुष के संबंध भी प्रभावित हुए क्योंकि परिवार की प्राचीन संकल्पना अब नये अर्थों के साथ नये रूप में विकसित होने लगी। औद्योगिक सभ्यता ने पूँजीवाद की शोषक प्रवृत्ति को इतना प्रभावशाली बना दिया कि नैतिकता प्रधान समाज का ढाँचा अब अर्थ प्रधान होने लगा। अर्थ संग्रह के लिए नैतिकता और अनैतिकता की अब कोई सीमा रेखा नहीं रह गई। राजनीति पर भी इसका वही विनाशकारी प्रभाव हुआ और वह जनोन्मुख होने के बजाय सत्ता के इर्द गिर्द घूमने लगी। परिवारों का बिखराव और बाजारवादी सभ्यता ने एक सदियों पुराने नैतिक समाज को नैतिक मूल्यों के संघर्ष की पीठिका पर ला खड़ा किया। परिणाम स्वरूप नैतिक मूल्यों में सिर्फ परिवर्तन ही नहीं हुए, नये नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए नई परिभाषायें भी गढ़ी जाने लगीं। लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि इनके चलते साहित्य में अंतर्द्वंद्वों का नया अध्याय खुला। साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने इन परिवर्तित नैतिक मूल्यों को उनकी यथार्थता में पूरी अर्थवत्ता के साथ अपनी कथावस्तु के कलेवर में स्थान दिया है।

साठोत्तरी उपन्यासों में सन् साठ के बाद आये नैतिक परिवर्तन को बृहद दृष्टि से अवलोकित किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इंसान के जीवन के नैतिक मापदंडों में बहुत परिवर्तन आया। स्त्री व पुरुष प्रथम आदरणीय थे बाद में नारी दासी हो गई और नैतिक मूल्य परिवर्तन के साथ ही नारी न अपने को देवी मानती है ना दासी वह भी पुरुषों के समान ही है। संयुक्त परिवार टूटने लगा सुविधा के कारण एकल परिवार ही होने लगे। उसमें असुरक्षित हुए वृद्ध और बच्चे। पहले की नैतिकता में सब मिलकर एक दूसरे का दुःख बाँटते थे लेकिन बदलते समय में एक परिवार तक ही सिमट गये वे ही सपने देखने सुख देने पाने के योग्य समझे जाने लगे उनका सबके लिए कुछ नहीं रहा। सिर्फ स्वार्थ ने घेर लिया। इस समय कामकाजी महिलाओं का क्षेत्र बढ़ा वे बड़े पद पर सुशोभित होने लगी, फिर भी असुरक्षित ही रहती है।

संदर्भ बिंब

- | | | |
|------------------|----------------------|----------|
| 1. एक जमीन अपनी— | चित्रा मुद्गल, | पृ. ५३ |
| 2. आवां— | चित्रा मुद्गल, | पृ. १४३ |
| 3. चाक— | मैत्रेयी पुष्पा, | पृ. ११ |
| 4. अंतर्वशी - | उषा प्रयंवदा. | पृ. -१०८ |
| 5. निष्कवच - | राजी शेठ | पृ. १९ |
| 6. में और में - | मृदुला गर्ग | पृ. १६२ |
| 7. नीलोफर - | कृष्णा अग्निहोत्री - | पृ. १७ |